R.S.

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष २०	क्वार सं० २०२९ वि० सितम्बर सन् १९७२	सं० १२/२३८

गुरु कृपा

मन में जब रम गई छवि सतगुरु की, योग युक्ति से ध्यान बना ।
नर जन्म सफल भया सहज रीति से, चित आनन्द की खान बना ॥
घट प्रगट विवेक की गति उमगी, साधन सम्पन्न हुआ जीवन ।
इस साधन के परताप महातम से, अनुभव और ज्ञान बना ॥
बन में जाकर क्या लेना था, क्या लाभ था धूल उड़ाने में ।
मेरी दृष्टि में घर पर्वत और बन, सब ही एक समान बना ॥
रवि चन्द्र की कला प्रभा प्रगटी, जगमग जगमग हुई उजियारी ।
उस ज्योत के जोत में रूप लखा, यों मेरा आतम ज्ञान बना ॥
नहिं काल कर्म व्यापै मुझको, नहिं चिन्ता दुविधा का भय है ।
सुध बुध भूली है तन मनकी, ममता तजि गुरु अभिमान बना ॥
व्यौहार में परमारथ आया, दोनों में भेद नहीं किन्चित ।
सम दृष्टि हो सम ज्ञानी हो, समता से अब कल्यान बना ॥
राधास्वामी की है दया भारी, तारा तारा तारा मुझको ।
भव सागर पार हुआ जीते जी, सत पद में अस्थान बना ॥

'मनुष्य बनो' का इस वर्ष का अन्तिम अंक

आवश्यक निवेदन

इस अंक के साथ हम 'मनुष्य बनो' का बीसवां वर्ष पूरा कर रहे हैं। 'मनुष्य बनो' को शुरू शुरू में हम थोड़े से सज्जनों ने मिलकर परमदयाल जी की आज्ञा ने चलाया था और आरम्भ में कुछ समय तक मैंने इसका कार्य किया फिर भी इस समय मुझे ग्राहकों के पते तथा उन पर चन्दे की बकाया जानने में बहुत कठिनाई हुई। अब भी बहुत से ग्राहक ऐसे हैं जिनका कोई चन्दा अब तक प्राप्त होने का कोई इन्द्राज नहीं मिलता। उनसे प्रार्थना भी की गई है कि अपना चन्दा भेजें या पत्र लिखकर सूचना दें मगर अभी तक उन्होंने हमारी इस प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया।

चूंकि कुछ लोगों के पत्र हमारे पास आये कि उन्होंने अपना चन्दा विश्वप्रेमी श्री मुन्शीलाल जो को दे दिया था। इस पर हम बराबर उनको पत्र भेजते रहे। इस तरह हमने कोई जिम्मेदारी विश्वप्रेमी श्री मुन्शीलाल जी के ऊपर नहीं रहने दी है।

इसका चन्दा

बार-बार प्रार्थना करने पर भी 'मनुष्य बनो' का चन्दा अभी तक बहुत से ग्राहकों ने नहीं भेजा है। कठिनाई यह है कि न तो चन्दा भेजते हैं और न यह सूचना देते हैं कि हम ग्राहक रहना नहीं चाहते। यह भी नहीं लिखते कि हम चन्दा देने में असमर्थ हैं ताकि उनको मुफ्त ही भेज दिया जाया करे। **ऐसी स्थिति में हम विवश होकर सब ग्राहकों को सूचना दे रहे हैं कि जिन पर चन्दा बाकी है वह तुरन्त मनीआर्डर से भेजदें वर्ना अगले वर्ष से उनको पत्र भेजना बन्द कर देंगे।**

आजीवन सदस्य

पुराने कागजों से ऐसा पता चलता है कि श्री मुन्शीलाल जी के समय में कुछ ग्राहकों ने इकट्ठा रुपया दिया और वे आजीवन सदस्य बन गये मगर हम अभी तक उनके नाम नहीं जान पाये हैं अतः उनसे प्रार्थना है कि वे अपना नाम व पता तथा रुपये की तादाद जो दी है लिखकर

भेजदें ताकि उसका इन्द्राज कागजों में कर दिया जाय और आगे कोई कठिनाई न हो।

हमारे ग्राहकों को यह पूरी तरह समझ लेना चाहिये कि 'मनुष्य बनो' का कोई स्थायी फंड नहीं है और आजकल मंहगाई के समय में छपाई आदि का खर्चा बढ़ा हुआ है। इस पर ग्राहक महोदय अपना चन्दा भी न दें तो इससे पत्र के चलने में कितनी परेशानी और कठिनाई होगी और इस काम में बाधा आयेगी यह जान लेना जरूरी है। इसीलिये ग्राहकों को अपना अगले वर्ष का चन्दा तुरन्त भेज देना चाहिये।

इसके साथ ही 'मनुष्य बनो' के प्रचार में यथाशक्ति प्रत्येक ग्राहक को पूरा प्रयत्न करना चाहिये। इससे उनका भी भला होगा और दूसरों को भी लाभ होगा। 'मनुष्य बनो' का उद्देश्य ही यही है कि लोग सदाचार और कल्याणकारी मार्ग अपनायें।

आज हमारे सामने जीगती जागती मूर्ति परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज की मौजूद है। उनकी अपार दया आज यह हो रही है कि अपना अमूल्य खजाना मुफ्त लुटा रहे हैं। उन्हीं की आज्ञा से उस खजाने को हम कौड़ियों में चारों ओर बखेर रहे हैं। क्यों ? क्या इसमें हमारी कोई गरज या स्वार्थ है ? नहीं। महाराज की आज्ञा से आपके लाभार्थ यह पत्र चालू है। मगर 'कर्महीन नर पावत नाहीं' वाली कहावत है। जो संस्कारी, भाग्यशाली, पुरुष हैं वही इन मोतियों को समेट कर अपने पास रख रहे हैं और अपना जीवन बनाने में लगे हुये हैं।

अगले वर्ष की नवीनता

अगले वर्ष में इसकी पृष्ठ संख्या भी अधिक की जायगी। इसका टाइटिल भी रंगीन व सुन्दर होगा। इसमें कहानियाँ, कथायें, भक्तगाथाओं आदि के रूप में साधारण लोगों के लिये उपयोगी सामिग्री होगी।

इसका चन्दा फिर भी वही रहेगा क्योंकि महाराज जी की ऐसी ही आज्ञा है कि चन्दा न बढ़ाया जाय। ऐसी स्थिति में सब भाइयों का यह परम कर्त्तव्य है।

(१) इसका चन्दा वर्ष के शुरू होते ही भेजदें।

(२) इसके प्रचार तथा ग्राहक बनाने में सहायक हों। और तन मन धन से इसकी सहायता करें ताकि आपकी और अधिक सेवा की जा सके।

कुछ लोगों को डाक की गड़बड़ी से पत्र नहीं मिल पाते। उनकी चिट्ठी आने पर हमें हर एक को दो-दो तीन-तीन बार 'मनुष्य बनो' भेजना पड़ा है। इसके लिये हमारा निवेदन है कि वे समय पर अंक न मिलने पर तुरन्त अपने डाकखाने को शिकायत कर दिया करें। इस वर्ष में अधिक मांग होने पर हमको एक दो अंक कई-कई बार भेजने पड़े जिससे स्टाक में नहीं रहे। इसलिये ४-६ ग्राहकों को दुबारा नहीं भेज सके।

हम आप सब के कल्याण की प्रार्थना करते हैं कि मालिक सबका भला करे।

देवीचरन मीतल, सम्पादक

शोक समाचार

खेद है कि ठाकुर पदमसिंह जी निवासी हुजूराबाद (आ.प्र.) ता० १७ अगस्त ७२ को इस असार संसार को त्याग कर चल बसे। आप महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज के शिष्य थे और उनके बड़े भक्त थे। आपने हुजूराबाद में एक सत्संग घर का निर्माण कराया और सत्संग का कार्य बराबर करते रहे। उनके मृत्यु से सत्संग के कार्य को बड़ा धक्का पहुँचा है। आपने महर्षि जी महाराज की कविताओं का बड़ा सुन्दर संग्रह करके बड़ा भारी कार्य किया है। मालिक से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे और उनको अपने चरणों में वासा दे तथा उनके परिवार को इस दुख को सहन करने की शक्ति तथा धैर्य प्रदान करे।

—देवीचरन मीतल, सम्पादक 'मनुष्य बनो'

प्रोग्राम दशहरा सत्संग

१५ अक्टूबर ७२	रविवार	प्रातः ९ बजे से ११ बजे तक
१६ "	सोमवार	" "
" "	"	सायं ३ बजे से ५ बजे तक
१७ "	मंगलवार	प्रातः ९ बजे से ११ बजे तक

लंगर का प्रबन्ध सोमवार व मंगलवार की प्रातः दयाल मानवता प्रचारक सभा की ओर से होगा। स्थान सत्संग सालवान स्कूल पुराना राजेन्द्रनगर होगा।

विनीत :—नन्दलाल उर्फ आनन्ददयाल दुकान नं० १०६ के पीछे, शंकर रोड मार्केट नया राजेन्द्रनगर नई दहली

* होनी और अनहोनी *

(ले० – महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज)

(गतांक से आगे)

तो क्या हमारी भलाई बुराई का नक्शा ईश्वर के अन्तर स्थित होगा ? बात तो ऐसी मालुम होती है। यदि ईश्वर में यह भाव न होते तो उनकी अभिव्यक्ति (जहूर) दुनियां में कैसे होती। मगर इससे ईश्वर में एक बड़ा भारी दोष लगता है। वह क्या है ? वह यह कि बुराई और भलाई का बीज स्वयं उसमें मौजूद है। इसलिये वह न तो पूर्ण रूप से भला ठहरता है न बुरा। प्रत्यक्ष में सुनने से यह बात सच्ची मालुम होती है मगर वास्तव में जिसको इस निचले मंडल में भलाई और बुराई के नामों से पुकारते हैं वह केवल आपेक्षित बातें हैं यदि उपकी आपेक्षिक (निस्बती) दर्जों को तोड़ दिया जाय तो न कहीं नेकी रहती है न बदी रहती है, ईश्वर न भला ठहरता है न बुरा। वह जैसा है वैसा है।

फिर भी दृष्टि के सामने एक और ही ढंग का सवाल है, यहां दूसरी ओर ख्याल करने की आवश्यकता कम और उसकी ओर अधिक मालुम होती है। यदि हम 'होनी और अनहोनी' के मसले को सच मानते हैं तो उसमें प्रत्यक्ष रूप से कई दोष बाधक होते हैं यदि यह सच है तो फिर हमारा शिष्टाचार सभ्यता क्या रही। फिर हमको यश और अपयश का अधिकार क्या रहा। यह सब पढ़ना लिखना, जीवन के अनुभव प्राप्त करना व्यर्थ है हम तो अब तक यही समझते रहे कि हमारे जीवन का कोई न कोई उद्देश्य है और उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग में परिश्रम होता ही है और असली चाहे कल्पित आशाओं के सहारे हम सबको सहन करते हुये अपने ढंग पर चले जा रहे थे। लेकिन अब चूँकि होनी और अनहोनी का मसला बीच में आ गया, आशाओं पर पानी फिर गया। फिलोस्फी की नींव ढह गई। आवागवन, कर्म, ज्ञान, बन्धमुक्त के प्रश्न की अब आवश्यकता हीन रहे।

दुनियां में मुसीबत दिखाई पड़ती है और हम कहा करते थे कि यह मनुष्य के अपने जन्म जन्मान्तरों के कर्मों के फलों का परिणाम था। हाय अब क्या कहें और किस सिद्धान्त की व्याख्या के क्रम में सन्तुष्टि प्राप्त करें। बुद्धि चाहती है कि हर बात का पता लगाये। कोई कार्य ऐसा नहीं है जो कारण से रहित हो। सत से असत और असत से सत का होना सम्भव मालुम नहीं होता है। अब क्या कहा जाय! या तो उसको मानें या न मानें। दोनों बातें कभी नहीं हो सकतीं। यदि कर्म और आवागवन के मसले सच हैं और कारण और कार्य का नियम अटल है तो होनी और अनहोनी का मसला गलत है। यदि यह ठीक है तो वह असत्य ठहरता है। एक का सच होना दूसरे को गलत सिद्ध करता है। हिन्दुओं की धार्मिक फिलोस्फी के बड़ी खोज करके कितने सिद्धान्त गढ़े थे, जो मामूली बुद्धि वालों को सन्तुष्टि देते थे मगर हिन्दू धर्म ही है जो होनी और अनहोनी का सवाल भी उठाता है। यदि मनुष्य माने भी तो किसको माने। यह दिल दुखाने वाली दशा है। न केवल हिन्दू धर्म ही ने यह प्रश्न उठाया है किन्तु और सम्प्रदाय भी इशारों में वहीं कहते हैं।

कर्म धर्म के अभिमान के दावे मिटे और हम बुरी तरह मारे गये। क्यों, ऐसा है कि नहीं? दादू साहब का कथन है—

दादू दावे दूर कर, निर्दावे दिन काट।
कैते सौदा कर गये, पंसारी की आट॥

हिन्दू मुसलमान सब ही ऐसा कहते हैं। जैन धर्म भी एक अवसर पर ऐसा कहता है कि बहुत से जीव ऐसे हैं जिनकी कभी मुक्ति नहीं होती। स्लाम भी इस विश्वास को प्रगट करते हुये स्वर्ग और नर्क का दृश्य पेश करता है। केवल हिन्दू और बुद्ध ही रह जाते है जो समस्त आत्माओं के लिये मुक्ति का समाचार देते हैं। बौद्धों में जहाँ तक हमको ज्ञात है होनी और अनहोनी का प्रश्न स्पष्ट शब्दों में नहीं उठाया गया। मगर हिन्दू उसको जगह-जगह पेश भी करते हैं और साथ ही साथ पुरुषार्थ और परिश्रम करने को भी कहते हैं। क्या इनमें विरोध नहीं है। चाहे साधारण विवेक वालों

को उनकी शिक्षा सम्बन्धी गोरख धंधे का पता न लगे मगर ओ ऊँची श्रेणी के विवेकी हैं वह कैसे-कैसे उसकी ओर से आँख मींचें। वह दोनों बातें कहता है :—

हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम ।
ताही विधि रहिये, जा विधि राखें राम ॥

जब साहस है तो फिर पराधोनता कैसी ! जब सब विधि से राम का रखना ही सब कुछ है तो फिर साहस कैसा ! देखो ! द्वन्द पना है या नहीं ? और कोई चाहे जो कुछ कहे मगर हमको स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि सारी बात गोल मोल कही गई है—

सूफी ही क्यों व्यास ऋषि महाभारत के रचियता और ब्रह्मसूत्र के लेखक एक जगह धर्मराज युधिष्ठर से कहलवाते हैं कि—

श्रुतियों विभिन्ना स्मृतियों विभिन्ना
न तह मुनिर तस्य मम् न भिन्नम्
धर्मस्य तत्वम् गहनतम् गुहायाम ।
महाजनो येन गतः स पंथा ॥

अर्थात् वेदों में मतभेद है। श्रुतियों में भिन्नता है कोई मुनि नहीं है जिनके मत में मतभेद न हो। धर्म का तत्व अत्यन्त गूढ़ और कठिन विषय है। जिस मार्ग पर बड़े लोग चले हैं वही पंथ है।

देखो दोनों सूफी और व्यास लगभग एक मत के दिखाई पड़ते हैं। शब्दों में चाहें हेर फेर हो मगर मन्तव्य दोनों का एक ही है। दोनों द्वन्दावस्था से घबराकर अपनी कठिनाइयों को प्रगट करते हैं।

यह पुराने धर्मों के बारे में हो लिया। आजकल यूरुप के स्प्रीचुएलिस्ट अर्थात् रूहों की स्थायी अस्तित्व के खोजी को कहते हैं उनकी भी सुनो—

सिगनूरार निस्ट बुज्जा मूं फ्रांस का खोजी कहता है कि—"होनीं घटना ठीक है। मैं उस पर विश्वास करता हूँ और विश्वास करने के लिये विवश हूँ यद्यपि मुझको इसका भी निश्चय हैं कि घटनायें एक ही ढंग में प्रगट नहीं करते।" दूसरे यरूसर बर्गसन की भी यही राय है और यदि तुम इन

स्प्रचुएलिस्टों की खोज की रिपोर्टों को पढ़ो तो तुम उसी नतीजे पर पहुचोगे कि 'होनी' अवश्य अमर है। इसमें सन्देह नहीं कि वह कहीं-कहीं गोल मोल शब्दों में अपना विचार प्रगट करते हैं। मगर उनकी रूहों की वार्तालाप के परिणामों से क्या प्रगट होता है। जब उनके विचार और विश्वास में इन रूहों की वर्षों की भविष्यवाणी ठीक बैठती है तो हमको सिवाय इस बात के मान लेने के और कोई चारा नहीं रहता कि 'होनी' सच है यदि जी में आवे तो इनको भी जाने दो। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी क्या सिद्ध करती है ? जब तक वह सैकड़ों वर्ष की आने वाली घटनाओं का पहिले ही से पता बता देते हैं तो क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जो होने वाला है इसका प्रबन्ध कुदरत में पहिले ही से मौजूद रहता है। यदि तुम कहो कि—"वैसे ही स्वयं इस प्रकार के कारण बनते चले आते हैं कि जिनके क्रम में विशेष प्रकार के झगड़े का इजहार हुआ करता है और यदि उनके रोकने की कोशिश की जाय तो सफलतापूर्वक उनका रोकना सम्भव होगा।" तो हमको तुम्हारे साथ वादविवाद करने की आवश्यकता नहीं है। हम केवल इतना पूछते हैं कि किसने उनके निर्णय का खंडन किया हैं ! इसका उदाहरण नहीं मिलता। इसलिये विवश इसी परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि जो कुछ होने वाला है वह होकर रहता है इसका इलाज असम्भव है। वाल्मीकि ऋषि अपनी रामायण में एक जगह लिखते हैं कि 'हिरन कहीं सोने का देखा नहीं गया मगर श्री रामचन्द्र जी बनावटी सोने के हिरन के पीछे दौड़ पड़े। सच है कुसमय में बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है।" एक भजन भी इस अवसर पर सुनाते हैं—

कर्म गति टारी नाहिं टरे ॥
गुरु वशिष्ट महा मुनि ज्ञानी, लिख लिख लगन धरे।
सीता हरण मरण दशरथ को, बन में वि०ति परे ॥
कहाँ वे राहु कहाँ वे रवि शशि, आन संजोग परे।
सतवादी राजा हरिचन्दा, नीच घर नीर भरे ॥
दुर्वासा ऋषि श्राप दियो है, यदुकुल नाश करे।

पांडव के हरि सदा सारथी, सो भी बन बिचरे ॥
तीनों लोक कर्म के गति वश, जीव सो कहा करे ।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, भूला भटक मरे ॥

यहाँ इस भजन में कर्म का अर्थ काम नहीं है किन्तु भाग्य के हैं क्योंकि यदि कर्म के अर्थ लिये जाते तो फिर अवतार का मन्तव्य समाप्त हो जाता है।

हमने इतने उदाहरण दे दिये हैं। स्प्रीएलिस्टों की रिपोर्टें तो इनसे हमेशा भरी रहती हैं जिनका जी चाहे, उनको पढ़ते रहें और उनसे 'होनी' अटल और अमिट सिद्ध होती जायगी।

किन्तु प्रश्न ज्यों का त्यों रहता है कि फिर हमको क्या करना चाहिये। उसका उत्तर तो यही है कि जो कुछ होने वाला है वह अवश्य होगा और होकर रहेगा। हाँ बुद्धि को बढ़ाकर आदमी को दृढ़ रहने की कोशिश करनी चाहिये। यदि तुम कहो कि कुछ ऐसी दशा में नहीं करना चाहते तो तुम्हारा कहना बेजा होगा क्योंकि हमारा तुम्हारा सब करना धरना भी उसी 'होनी' के नियम के आधीन है। उसको तो करना ही पड़ेगा।

अफसोस है कि यह शिक्षा यदि इन्हीं शब्दों में प्रगट की जाती है तो संसार की दृष्टि से उसका परिणाम हानिकर व भयंकर सिद्ध होने की सम्भावना है। लेकिन हम इस अवसर पर किसी प्रकार की शिक्षा नहीं देते किन्तु तुम्हारे सोचने समझने के लिये एक प्रसंग प्रस्तुत कर रहे हैं ताकि तुमको इस पर सोच विचार करने का अवसर हाथ आये। तुम अपने निजी अनुभवों का इससे मुकाबला करो और देखो कि गलत सिद्ध होता है या ठीक।

शिक्षा तो यह है कि निष्काम कर्म करो। फल की इच्छा कभी न रक्खो। ईश्वर इच्छा का मार्ग ग्रहण करो और देखते चलो कि दुनियाँ में क्या होता है और क्या हो रहा है। इस पर फिर कभी लेखनी उठाने का अवसर निकाला जायगा। जो विचार चित्त में आवे उसकी व्याख्या लाजिमी है। उसका दबाना किसी दशा में उचित प्रतीत नहीं होता। वर्ना सोचने समझने का काम कैसे होगा।

प्रवचन

परम दयाल फकीरचन्द जी महाराज

(मानवता मन्दिर होशियारपुर २६-५-७२)

बिन सतगुरु की भक्ति, जनम वृथा नर नारी ।
गुरु ज्ञान बिना संसार, अंधेरा भारी ॥
क्या जन्मे जग में आय, शब्द का खोज न कीना ।
अटके देवी देव संत का मर्म न चीना ॥
दुख सुख भोगें सदा, कर्म का यह फल लीना ।
भोगन में रहे लपटाय, विषय रस नित ही दीना ॥
जन्म मरण नहिं छुटे, कर्म का चक्कर भारी ॥ बिन सतगुरु०
वह बड़भागी जीव, मिले जिन सतगुरु प्यारे ।
कर उनका सत्संग, चरण उन सिर पर धारे ॥
सार बचन उर धार, होय कर्मन से न्यारे ।
सो मत लीना चीन, भरम तज दीने सारे ॥
बिन गुरु कौन सुनाये, जुगत यह सबसे न्यारी ॥ बिन सतगुरु०

कल शाम से मेरे दिमाग पर एक प्रभाव था। शाम को दो आदमी मेरे घर पर आये। उन्होंने बताया कि हमने भृगु संहिता से अपना एक प्रश्न निकलवाया है। उसमें लिखा हुआ है कि यह व्यक्ति राजस्थान में पिछले जन्म में पैदा हुआ था और किसी सेठ के साथ कारोबार में हिस्सेदार था। उस सेठ के मर जाने के बाद उसने उसके बच्चों के रुपयों को हड़प कर लिया था जिसका फल इसको इस जन्म में वर्तमान कष्ट हैं।

वह दोनों आदमी अपने किसी ख्याल से आये और चले गये लेकिन मेरे मन में यह ख्याल आया कि हमको सचमुच हमारे कर्मों का फल मिलता है ! हाँ, कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। किसी को कोई रोग हो जाता है कोई अंधा हो जाता है कोई लंगड़ा और किसी के हाथ कट जाते हैं तो

कोई दरिद्रता से दुखी है। यह सब कर्म का फल है। कोई धनी है, स्वस्थ है, अच्छा व्यौपार है या अच्छी नौकरी है तो यह सब कर्म का फल हैं। एक तो सुनी सुनाई बात होती है और एक किसी बात का पूर्ण विश्वास हो जाता है। इस बाणी में भी आया है कि कर्म के चक्र से आदमी बच नहीं सकता।

जन्म मरण नहिं छुटे, कर्म का चक्कर भारी ॥

कर्म का चक्र छूट नहीं सकता। अब लोग मुझे गुरू मानते हैं, यद्यपि मैं गुरु नहीं हूँ। मुझे तो ज्ञान प्राप्त करने के लिये यह गुरु भक्ति का फल मिला था। कहां राधास्वामी मत और कहाँ यह वर्तमान गुरुइज्म। यदि सचमुच कर्मों का ही फल मिलता है। मेरा रूप तुम लोगों के अन्तर प्रगट होता है और तुम्हारी अनेक प्रकार से सहायता करता है मगर मैं तो होता नहीं! अब तुम समझते हो कि बाबे ने हमारा यह काम कर दिया और वह काम कर दिया। अब यदि मैं आप लोगों को सच्ची बात नहीं बताता तो क्या मैं अपराधी नहीं हूँ? दूसरी बात यह कि आप लोगों के अन्तर मेरा रूप प्रगट होकर आपके काम करता है। इसके बदले में आप मुझे धन देते हैं, आदर मान देते हैं। यदि मैं बात को पर्दे में रखकर आपसे धन मान लेता हूँ तो मैं क्या आप लोगों के साथ धोखा नहीं करता? क्या मुझे इस कर्म का फल नहीं मिलेगा? भृगु संहिता से ऐसे बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि इस आदमी को अमुक बुरे कर्म के कारण इस जन्म में यह दण्ड मिल रहा है। बाणी कहती है कि कर्म के फल से कोई आदमी बच नहीं सकता।

चूँकि मेरे जिम्मे ड्यूटी है इसलिये मौजूदा गुरुओं को यह कहना चाहता हूँ कि आप लोगों ने पर्दा रक्खा है। यदि आप लोग जीवों को उनके मरते समय पर जाकर ले जाते हैं और आप लोग जीवों के अन्तर जाते हैं और उनके काम करते हैं तो फिर आप सचाई पर हैं। यदि आप नहीं जाते और यदि भृगुसंहिता ठीक है और यदि आप राधास्वामी मत या दूसरे धर्म की बातों को सत्य मानते हैं जिनमें यह लिखा है कि कोई भी जीव अपने कर्म के फल से बच नहीं सकता तो आप बताइये कि आप कितने पाप जमा करके अपने साथ ले जा रहे हैं और अगले जन्म में आपको इसका फल भोगना पड़ेगा या नहीं?

॥ मनुष्य बनो ॥

यदि आप लोगों ने मेरे सत्संग में आकर कुछ सोचा नहीं और अपना जीवन बनाया नहीं तो यहाँ आने से क्या लाभ !

बिन सतगुरु की भक्ति, जन्म वृथा नरनारी ।
गुरु ज्ञान बिना संसार, अन्धेरा भारी ॥

सतगुरु की भक्ति केवल फूल चढ़ाना और कपड़े पहिनाना ही नहीं है। गुरु की बात को समझना ही गुरु भक्ति है। एक गुरु भक्ति है और एक गुरु ज्ञान है। अब पिछली आयु आगई। मुझे मेरे कर्मों के अनुसार यह यश मिलना था, वह मिल गया।

यदि मैं बात को स्पष्ट रूप से नहीं कहता तो यह यश मुझे खा जायगा। मैं जानता हूँ कि तुम सत्संग में गुरु ज्ञान प्राप्त करने के लिये नहीं आते। तुमको तो सांसारिक वासनाओं से फुर्सत नहीं है। सत्संग में जाना तो आजकल एक रिवाज है। सत्संग के विचार से कौन जाता है !

गुरु की भक्ति इसलिये की जाती है कि तुमको गुरु ज्ञान मिले। गुरु ज्ञान यह है कि इस संसार के कर्मों से बचो या अपने कर्मों को अपने अनुकूल बनाओ। अपने स्वार्थ के लिये किसी को धोखा मत दो और किसी को हानि मत पहुँचाओ। यह है संत मत।

क्या जन्मे जग में आय, शब्द का खोज न कीना ।
अटके देवी देव, संत का मर्म न चीना ॥

तुमको यह मनुष्य चोला मिल गया मगर तुमने शब्द न सुना तो इस जन्म का क्या लाभ। पहिले बाहर के गुरु से शब्द को सुनो और समझो। जिसने बाहर में गुरु की बात को नहीं समझा वह अन्तर में क्या समझेगा। किसी ने गुरु के यहाँ जाकर चार रुपये रख के माथा टेक दिया, किसी ने हनुमान जी के मन्दिर में मत्था टेक दिया, कोई कहीं जाकर आर्ती कर आया, कोई कहीं जाकर कीर्तन कर आया और कोई गंगा जी में स्नान कर आया। इन सब में क्या अन्तर है ? कुछ नहीं। गुरु भक्ति है सत्संग में जाकर गुरु की बात को सुनना और समझना। समझेगा वह जिसको आवश्यकता होगी। जिसको आवश्यकता होती है वही बलिदान कर सकता है दूसरा

नहीं। इसलिये संतों ने टेक लगा दी है। डाक्टर के पास जाओ वह फीस मांगता हैं। वकील के पास जाओ, वह फीस मांगता है। जिसको जरूरत होती है वह देता है। यह इस बात का प्रमाण है कि इस आदमी को आवश्यकता है।

दुख सुख भोगें सदा, कर्म का यह फल लीना।
भोगन में रहे लिपटाय, विषय रस नित ही पीना॥

वह रात वाले आदमी शायद अब नहीं आये। रात को मेरी जान खाते रहे क्योंकि मुफ्त का मिला हुआ हूँ। सत्संग के समय तो लोग आते नहीं। जिस मन्तव्य से मैं सत्संग कराता हूँ उसको कोई सुनता नहीं। लोग तो मान बड़ाई की प्राप्ति के लिये आते हैं मगर यह भी तब मिलेंगे जब कर्म अच्छे होंगे। कर्म नीयत से बनता है और भोगों से कर्म बढ़ता है।

जन्म मरन नहिं छुटे, कर्म का चक्कर भारी।
बिन सतगुरु की भक्ति, जन्म वृथा नरनारी॥

सतगुरु की भक्ति क्या है?

दर्शन करे बचन पुनि सुने। सुन सुनकर नित मन में गुने॥
गुन गुन काढ़ि लये तिस सारा। काढ़ि सार तिस करे अहारा॥
कर अहार पुष्ट हुआ भाई। जग भौ भय सब गये नसाई॥

यह है गुरु की भक्ति। शेष है तुम्हारा प्रेम का भाव। दुनियां तो यह समझती है कि गुरु को रोटी खिलादो, कपड़े पहिना दो, मत्थे टेक दो, यही गुरु भक्ति है।

प्राचीन समय में गुरु लोग अपने चेलों से बहुत दिनों भक्ति करवाते थे। फिर कोई बात उसके कान में बताते थे। मैंने जीवन भर परिश्रम करके इस रहस्य को प्राप्त किया है और अब इसकी कदर करता हूं। यदि पहिली बार ही दातादयाल जी महाराज यह भेद मुझे बता देते तो शायद आज में भी इसकी इतनी कदर न करता। मैंने जीवन में बहुत दुख उठाने के बाद इस रहस्य को प्राप्त किया है।

वह बड़भागी जीव, मिले जिन सतगुरु प्यारे ।
कर उनका सतसंग, चरन उन सिर पर धारे ॥
सार बचन उर धार, होय कर्मों से न्यारे ।
सो मत लीना चीन, भरम तज दीये सारे ॥

यह सत्संग की महिमा बताई है । सत्संग से बात को समझना है । मैंने अपनी नीयत से समझाने में कोई कमी नहीं छोड़ी है । यह और बात है कि कोई बात मेरी समझ में न आई हो या किसी बात का मुझे पता न हो ?

बिन गुरु कौन सुनाये, जुगत यह सब से न्यारी ।
बिन सतगुरु की भक्ति, जनम वृथा नरनारी ॥

सतगुरु भेद देता है । दिया तो स्वामी जी ने भी मगर वह इस तरह लिख गये कि किसी की समझ में नहीं आता ।

संत बिना कोई भेद न जाने, वह तोहि कहें अलग में ॥

मैं उनको इसलिये सच्चा मानता हूँ कि वह लिख गये । यदि वह यह बात न कहते तो मैं यह कह देता कि उन्होंने हमको धोखा दिया है मगर वह कह गये । कहा तो कबीर ने भी—

धर्मदास तोहि लाख दुहाई । सारभेद बाहर नहिं जाई ॥
गूढ़ भेद नहिं साध छुपावें । आरत अधिकारी जब आवें ॥

मगर

अर्थात् जो आदमी जिज्ञासु है अधिकारी है संत उससे भेद नहीं छुपाते । मैं एक बार अमृतसर में सत्संग करा रहा था । सत्संग में एक आदमी पर मेरी दृष्टि पड़ी । मैंने उसको ध्यान से देखा तो मेरे अनुभव ने कहा कि इसके कर्म में गुरु पदवी है । कुछ समय के बाद वह गुरु बन गया, लेकिन वह गुरु गद्दी फिर उससे छिन गई । अब झगड़े के फैसले के बाद वह दुबारा उस गद्दी पर आ गया है । मुझे खुशी है कि मेरा अनुभव ठीक निकला । अब उसको लिखना चाहता हूँ कि वह सचाई से काम करे अन्यथा आजकल तो लोग पर्दा रखकर लोगों से धन और मान लेते हैं और अपने कर्म को बढ़ाते है । आप लोग तो यह समझते हैं कि बाबा जी आये और मेरा पानी

का नल चला दिया या मेरा पर्चा हल करा दिया या मुझे पुत्र दे दिया। यदि आप लोग इस ख्याल से मानवता मन्दिर में रुपया देते हैं कि बाबे ने हमारा यह काम कर दिया और मैं पर्दा रखता हूँ और आप से रुपया लेता हूँ तो मैं अपराधी हूँ और आपके साथ धोखा करता हूँ। किसी ने किसी तरह धोखा किया और किसी ने किसी तरह। आखिर है तो धोखा ही। तो फिर यह गुरु कहाँ जायेंगे ? मैं चाहता हूँ कि गुरु मत का सुधार हो जाय।

गुरु की यह महिमा है कि वह दया करके जीवों को रहस्य बता देता है मगर जिनको इसकी आवश्यकता नहीं उनके लिये यह कोई अर्थ नहीं रखता। इसलिये मैं बहुत सी बार सोचता हूँ कि मैंने इस भेद को खोलने में गलती की। लेकिन मुझे अपना आपा प्यारा है या यह भेद प्यारा है मैं क्यों अपने कर्म बढ़ाऊँ। दूसरे दातादयाल ने कहा था कि फकीर ! चोला छोड़ने से पहिले शिक्षा को बदल देना। मैंने अपने अनुभव के अनुसार शिक्षा को बदल दिया।

मासिक सत्संग

परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

(मानवता मन्दिर होशियारपुर १९-९-७१)

चलने की तो करी तयारी।
स्वामी से यों वचन उचारी॥
संशय एक उठा मोहि भारी।
सो निखार कहो विस्तारी॥

यह एक प्रश्न है कि सुरत इस जीवन में अपने देश में चली जायगी वह फिर वापिस आयेगी या नहीं। चेला गुरु से कहता है कि मेरे दिल में संशय है। कृपा करके इसका निवारण कीजिये।

सेवा वश जब काल को, सौंप दिया जब मोहि ।
तब अब कौन भरोस है, फिर भी ऐसा होय ॥

संत मत ने यह सिद्ध किया है और मैंने भी वह सिद्ध किया है कि शारीरिक जीवन और है, मानसिक जीवन और है, और आत्मिक जीवन और है। जो वस्तु इस शरीर में रहती हुई शरीर के बोध (अहसासात) का भान करती है, जो वस्तु मन में रहती हुई मन के संकल्पों की साक्षी है, जो शब्द और प्रकाश में रहती हुई शब्द को सुनती और प्रकाश को देखती है, वह और है। वह जो सुनने वाली वस्तु है, वह जो सब की साक्षी है, वह इस पिंजर में आकर फँसी हुई है। वह क्यों आई ? सृष्टि बन गई। शरीर बन गया। अब शरीर के कार्य में आनन्द नहीं रहा। कैसे ? जैसे बीमारी की दशा में क्लोरोफार्म दिया जाता है और बेहोशी आ जाती है तो शरीर में रक्त संचालन (दौरा) तो करता है और तुम में जीवन भी है मगर उस जीवन में आनन्द नहीं है। इसलिये जीवन और वस्तु है और हम और वस्तु हैं। जब काल ने शरीर बनाया, उस काल को राम कहलो, कृष्ण कहलो, खुदा कहलो या ब्रह्माण्डी मन कहलो। कोई नाम रखलो। तो उसने तप किया और इस शरीर के कार्य करने के लिये सुरत को मांगा। वहाँ से सुरत की धार आई।

अब प्रश्नकर्त्ता यह कहता है कि आपने हमको यहाँ भेज दिया। अब अगर हम उस घर को वापिस चले भी जांय तो इस बात की क्या गारन्टी है कि हम फिर वापिस नहीं आयेंगे।

हम किस घर से आये हैं ? अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि हमारा आदि घर देशातीत (लामकानियत) है। वहां गति नहीं है। गुरु नानक ने उसे अकाल पुरुष कहा है।

तब स्वामी हँस कर यों बोले ।
कहूँ बचन मैं तुम सो खोले ॥

स्वामी शिवदयालसिंह जी नहीं किन्तु हँस स्वामी बोले। हंस वह है जिसमें अनुभव है और अनुभव यह कहता है।

जान बूझ हम लीला ठानी ।
मौज हमारी हुई सुन बानी ॥

वह कहते हैं कि हमने जान बूझकर रचना का यह खेल खेला है। मौज ऐसी ही थी।

काल रचा हम समझ बूझ के ।
बिना काल नहिं खौफ जीव के ॥

रचना तो बनादी। जो वस्तु शरीर, मन और आत्मा को उत्पन्न करती है यह है काल और जो वस्तु इसमें खेलती है और इसकी सक्षी है वह है दयाल।

कदर दयाल नहीं बिना काल के ।
मौज उठी तब उस दयाल के ॥

यह मौज थी। रचना स्वाभाविक होती रहती है। मौज क्या है ? पांचों तत्व स्वाभाविक ही इकट्ठे हो जाते हैं और कोई न कोई जानदार वस्तु बन जाती है। जैसे दही और गोबर को मिला दो तो बिच्छू पैदा हो जाते हैं। जिस तरह दही और गोबर को मिलाने से बिच्छू पैदा हो जाते हैं या तुम्हारे शरीर के मैल या मल से जूँयें पैदा हो जाती हैं इसी तरह प्रकृति के और इस ब्रह्माण्ड के अन्दर जितने तत्व हैं उनके गुण और भार के अनुसार जीव जन्तु पैदा होते रहते हैं। फिर कुदरत की मौज क्या है ? कुदरत के अन्तर रचना बनने और उसके विनाश होने का कुदरत ने एक नियम बनाया हुआ है। उसका नाम मैं मौज समझता हूँ। कुदरत ने स्त्री का गर्भाशय इस तरह से बनाया है कि पुरुष का वीर्य उसमें जाता है तो बच्चा पैदा होता है। यह मौज है ?

दिया निकाल काल को वहाँ से ।
दखल काल अब कभी न यहाँ से ॥

चिराग जलता है। प्रकाश होता है। फिर उस प्रकाश में से धुआँ पैदा होता है। धुंये का प्रकाश में से पैदा होना एक प्राकृतिक बात है। ऐसे ही पारब्रह्म से रचना का होना प्राकृतिक है स्वाभाविक है। पारब्रह्म प्रकाश

है, सावित्री है, ज्योति है। यह ज्योति ही कर्त्ता पुरुष है। इस ज्योति का नाम ही काल है जो इस सृष्टि को रचता है।

मैं समरथ हूँ सब विधि जान।
बचन मोर तू निश्चय मान॥

तो हंस स्वामी अर्थात् अनुभव रूपी ज्ञान कहता है कि मैं सामर्थ्यवान हूँ। तुम मेरी बात पर विश्वास करो। यह वह अवस्था है जिसमें से शब्द और प्रकाश निकलते हैं। वह अमर है और हमेशा स्थित है। मुझे पता नहीं कि राधास्वामी मत वाले उसे क्या कहते हैं। मैंने जो समझा वह कहता हूँ।

काल न पहुँचे उसी लोक में।
अब न करूं कभी ऐसी मौज मैं॥

यह वह रहस्य है जिसको समझने में मैंने सारी आयु खोदी। वह कहते हैं कि काल को मैंने रचा है। जब सुरत उस घर में पहुँच जाती है तो फिर काल कुछ नहीं कर सकता। क्यों? देह, मन और आत्मा का भी शरीर है। इस प्रकृति के अन्तर शरीर बनते हैं, विभिन्न लोक लोकान्तर बनते हैं किसी लोक में केवल आत्मा का ही केन्द्र रहता है। वहाँ केवल अकेली आत्मा ही रहती है - उस लोक का नाम सतलोक है। किसी जगह वही आत्मा अपने संकल्प पैदा करके मन को साथ ले लेती है उस जगह का नाम देवलोक है। देवताओं का लोक गंधर्व लोक, शिव लोक या त्रिकुटी या सुन्न का लोक है।

वही आत्मा जब मन को साथ लेती हुई अपनी वासना के कारण शरीर में आ जाती है तो वह जीव गति हो जाती है। यही सनातन धर्म की शिक्षा का सारांश है। रचना तो अनादि है। समुद्र में से लहरें और बुलबुले उठते रहते हैं और उसी में समा जाते हैं। जिसको इस जीवन में अपने रूप का ज्ञान हो गया है कि मैं चेतन का एक बुलबुला हूँ, उसी से निकला हूँ और उसी में समा जाऊँगा, वही मोक्ष को प्राप्त होता है। जब वह शक्ति इस शरीर में से निकल जाती है तो जैसे एक बूंद समुद्र में मिल जाने के बाद दुबारा उसी रूप में नहीं आ सकती। उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

ऐसे ही आदमी एक बार अपने घर का अनुभव कर लेता है फिर दुबारा वह जन्म नहीं लेता। टूटने को तो प्रत्येक का शरीर टूट जाता है मगर मन का तो नाश नहीं हुआ, इसलिये वह अपने संकल्प और वासना के आधीन फिर दूसरा जन्म लेगा। यदि किसी को यह ज्ञान हो जाये जैसे मुझे हुआ कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता तो वह मन को छोड़ जायगा और वह सतपद या आत्मिक जगत में चला जायगा। चूंकि उसका कारण शरीर अर्थात् आत्मा स्थित है इसलिये वह वहां आनन्दमय रहेगा। उसको फिर मन और शरीर का चोला नहीं मिलेगा। आत्मपद का चोला मिलेगा।

इसलिये इसी जीवन में यदि तुम अपना इष्ट अर्थात् आइडियल फकीरचन्द या दातादयाल या बाबा सावनसिंह या राम या कृष्ण को बनाये रक्खोगे तो तुम वापिस आते रहोगे। इसलिये अपना आइडियल परम तत्व या दयालदेश रक्खो। जीवन में एक बार कोशिश करके सत्संग द्वारा बात को समझलो मगर तुम लोग तो दुनियाँ की वस्तुओं के लिये आते हो। आदमी डरता रहता है कि कहीं यह न हो जाय, वह न हो जाय। पठानकोट से कुछ आदमी आये थे। मैंने उनसे कहा था कि चिन्ता मत करो, कुछ नहीं होगा मगर वह डर के मारे वहाँ रह न सके और हरिद्वार चले गये क्योंकि विश्वास नहीं था। दुनियां में विश्वास बहुत बड़ी चीज है।

मैं सन् १९४५ ई० में लाहौर में पीरेमुंगा के मकान पर बैठा हुआ था तो मैंने कहा कि मुझे दिखाई पड़ रहा है कि लाहौर खून बरसेगा। वहाँ मुझ पर विश्वास रखने वाला एक आदमी रामप्रकाश था जो यहां बैठा हुआ है। वह कहने लगा कि महाराज फिर हमें क्या करना चाहिये। मैंने कहा कि अपनी नीयत को शुद्ध रक्खो। तुम्हारी हानि नहीं होगी। कुछ समय के बाद पाकिस्तान बन गया और लाहौर में रक्तपात शुरू होगया। दहली से रामप्रकाश का खत आया कि लाहौर में हम पर हमले हुये। मैं अपने घर की कुन्डी लगाकर दहली आ गया हूँ। कोई सामान नहीं ला सका। मेरे पास मेरा बी०ए० का सर्टीफिकेट भी नहीं है जो यहां नौकरी कर सकूं। सब कुछ वहां रह गया है। अब रोटियों की भी कठिनाई हो

रही है। उसकी चिट्ठी पढ़कर मुझे बड़ा खेद हुआ और मन ही मन में सोचने लगा कि फकीर ! यदि गुरु बनकर किसी को उपदेश न किया होता तो आज तू दुखी न होता। मैंने उसको लिखा कि मैं दो माह बाद तुमको एक हजार रुपया भेज दूंगा मगर किसी से कहना नहीं।

उसका एक रिश्तेदार जाने लगा तो उसने उससे कहा कि मेरा मकान भी देख आना। उसने लाहौर जाकर जब उसका मकान देखा तो उसका सामान ले आया और रामप्रकाश को दे दिया। उसने चिट्ठी में मुझे सारा हाल लिखा और कहा कि आपने मेरे सामान की रक्षा की है। क्या मैंने उसकी रक्षा की ? नहीं, मैं तो इस विचार में रहा कि यदि तुम किसी को हिदायत करते हो और वह तुम्हारी हिदायत पर अमल करता है। फिर उसकी हानि हो जाती है तो तुम दोषी हो।

इसलिये मैं हमेशा यह कहा करता हूँ कि दुनियां में विश्वास बहुत बड़ी वस्तु है। परमार्थ में बाहर का गुरु ज्ञान दे देता है, भेद बता देता है। जब जीव की बुद्धि उस पर विश्वास कर जाती है तो उसका कल्याण होजाता है जैसे रामप्रकाश का सामान बच गया। इसलिये तुम विश्वास रक्खो कि जिसने इस जीवन में सत्संग करके असलियत को समझ लिया है और उसको अपने घर जाने की आवश्यकता है तो वह अपना इष्ट राधास्वामी या अनामी या अकाल पुरुष रक्खे। यदि तुम यह इष्ट रक्खोगे तो अधिक साधन की भी आवश्यकता नहीं है। अपना इष्ट वह रक्खो जो तमाम सुरतों का भण्डार है।

मैं अपना कर्त्तव्य पूरा कर जाना चाहता हूँ। बात को समझने के बाद बाहरी गुरु का अहसान रह जाता है। जो आदमी भेद या रहस्य को समझने के बाद गुरु की सेवा करता है वह असली और निष्काम सेवा है। जो ज्ञान प्राप्ति के लिये सेवा करता है उसमें स्वार्थ है। स्वार्थ के लिये तो सब ही सेवा करते हैं। इसलिये सन्त सतगुरु वक्त की हैसियत में संसार को सतज्ञान दिये जारहा हूँ। जिनके भाग्य में है वह समझेंगे। जिनके भाग्य में नहीं है तो उसमें मैं क्या कर सकता हूँ।

एक बार यह मौज जरूर।
अब मतलब नहीं डाली घूर ॥

उस परम तत्व से आत्मा का केन्द्र बन जाता है। फिर वह बढ़ कर प्रकाश का शरीर बन जाता है और फिर स्थूल देह बन जाता है। जब आदमी को एक बार ज्ञान हो जाता है और वह अपना इष्ट चौथा या पाँचवाँ पद धारण कर लेता है, फिर वह इस दुनियां में नहीं आता, न और किसी लोक में जाता है। इसलिये सन्तों के मार्ग में कलियुग में नाम की महिमा है और गुरु भक्ति है। गुरु भक्ति है सत्संग में जाकर बचन को सुनना और गुनना और नाम भक्ति है अपने अन्तर शब्द को सुनना। यदि सत्संग से तुमको यह ज्ञान नहीं मिला जो मैं बता रहा हूं तो तुम चाहे शब्द सुनते रहो मगर आवागमन समाप्त होना कठिन है। जब तक यह ज्ञान नहीं है कि यह संकल्प विकल्प वास्तव में हैं नहीं, तब तक शब्द सुनने वाले के पार होने में सन्देह है। इसीलिये स्वामी जी महाराज कहते हैं :—

बिन सत्संग जो शब्द में पचते, वह भी मूरख जान।

जिन लोगों की सूक्ष्म बुद्धि नहीं है उनके लिये वेदमार्ग है। अपने विचार को ठीक रक्खो। विचार की लहरें चलती हैं। यह छाया देश है। इससे ऊपर माया देश है। प्रकाश से परे जो अवस्था है वह हमारा निज स्वरूप है। हम सब वहां से आये हैं और वहीं वापिस जाना है। जो आदमी एक बार ज्ञान प्राप्त करके वहाँ पहुँच जायगा वह दुबारा वापिस नहीं आयेगा।

तू शंका मत कर चित में।
चलो देश हमरे रहो सुख में ॥

परम सुख या परम शान्ति चौथे पद में है। अब आगे यह वर्णन करते हैं कि जिन लोगों का यह इष्ट नहीं है उनका क्या परिणाम होगा।

सुन कर सुरत मगन होय बोली।
निश्चय किया बचन हम तोली ॥
मेरे मन अब दया समाई।
प्रश्न करूं जीवन हित लाई ॥

वह कहते हैं कि मेरी तो सन्तुष्टि हो गई मगर मैं जीवों के हित के लिये सवाल करता हूँ।

जग में सुरत अनेकन आईं।
काल जाल में गईं भुलाईं॥
कोई करे जप कोई तीरथ दाना।
कोई मूरत कोई तप अभिमाना॥
कोई आचार कोई नेमी धर्मी।
कोई विद्या पढ़ करते करनी॥
कोई वैराग त्याग सब देते।
बन पर्वत में जाकर रहते॥
प्राण योग कर मुद्रा साधें।
पाँच मुद्रा धरें समाधें।
चाचरी भूचरी खेचरी भाई।
और अगोचरी उनमुनी लाई॥
चक्र भेद घट खेंचें प्राण।
सहस कँवल चढ़ लावें ध्यान॥
कोई ज्ञानी कोई वाचक लक्ष।
कोई षट शास्त्र करते पक्ष॥
मीमांसा वैशेषिक न्याय।
पातंजली योग ठहराय॥
साँख्य करे नित अनित विचार।
वेदान्ती मिथ्या संसार॥
व्यापक सत चित आनन्द रूप।
जीव ब्रह्म दोउ एक स्वरूप॥

यह मानव जीवन में धार्मिक विचार हैं।

जीव वाच त्रैदेह बतावें।
ईश्वर वाच ब्रह्मांड सुनावें॥

।। मनुष्य बनो ।।

विश्व नाम तेजस और प्राग ।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति भाग ।।
वैराट हिरनगर्भ अव्याकृत ।
तीन नाम ईश्वर कहें कल्पित ।।
वाच वाच दोऊ मिथ्या मान ।
व्यापक लक्ष एक कर मान ।।

वेदान्ती जगत को मिथ्या मानते हैं। मैं उसको मिथ्या कहता हूं जो मेरे मन में संकल्प विकल्प और भाव विचार उठते हैं मगर बाहर की दुनियां मेरे लिये मिथ्या नहीं है। यह भगवान के लिये मिथ्या होगी जिसने यह बनाई है। जब चाहेगा, इसको समेट लेगा। जबसे मुझे यह पता लगा कि मेरा रूप लोगों के अन्तर प्रगट होकर उनकी सहायता करता है और मैं नहीं होता तो मेरी आँख खुल गई। मैं यदि यह कहूँ कि सूर्य, चन्द्रमा, तारागण आदि नहीं हैं तो मैं इसको दिमाग की खराबी समझूंगा क्योंकि यह सृष्टि तो भगवान की बनाई हुई है।

विवर्त वाद इन कीन्ही सिद्ध ।
कोई अवछेद अजात विविद्ध ।।
पर सिद्धान्त सबन का एक ।
व्यापक निश्चय बाँधी टेक ।।

वह कहते हैं कि हम सर्वव्यापक हैं। यह तो यह ख्याल है। असलयित यह है कि वह जो व्यापक है वह तो एक सत्ता है। यह तो मन की एक चाल है।

पांच शास्त्र इन किये निषेद ।
छटा शास्त्र माना मत वेद ।।
चेतन को यह एक बतावें ।
और कुल्ल रचना जड़ गावें ।।
चेतन ज्ञान मगन होय फिरते ।
सबको कल्पित उसमें कहते ।।

मुझे सुनाम स्टेशन की एक घटना याद है। वहां एक साधू आया। मैंने उसे नमस्कार किया। वह कहने लगा किसको नमस्कार करते हो ? मैं समझ गया कि यह इस समय वेदांत की अवस्था में है। दो माह बाद फिर वही साधु मेरे कमरे में आ गया। मैंने उसको कुर्सी दी। मैंने पूछा कि कहो महात्मन क्या बात है ? उसने कहा कि दर्द गुर्दा से बीमार हूँ। यहाँ मेरे कुछ चेले हैं उनसे किराया खर्चा लेकर अमृतसर इलाज के लिये जाऊँगा। मैंने अपने दफ्तर के आदमी से कहा कि इसको अमृतसर का टिकट और आठ आने देदो।

लगभग १½ या दो महिने के बाद फिर वही साधु स्टेशन पर पड़ा पाया। कपड़े बड़े मैले थे और बोल नहीं सकता था। मैंने कहा कि महात्मन ! उस समय तुमको नमस्कार किया था। तुमने कहा था कि किसको नमस्कार करते हो। यदि इस समय भी वही दशा है तो फिर तुमको नमस्कार करता हूँ। लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया और उसकी आँखों से आँसू निकलने लगे। मैंने उसके चेलों को बुलाकर कहा कि उसको सँभालो। एक दो घण्टे में मर जायगा। उसके चेले उसे लेगये।

यह सब मन की लहरें हैं। सन्त मत इसको काल कहता है। यह सत-चित-आनन्द है। हमारा इष्ट वेदान्त नहीं है। हमारा इष्ट भक्ति मार्ग है। किसकी भक्ति ? अकह, अपार, अगाध और अनामी की। चूंकि जीव उसको देख नहीं सकता और उसका अनुभव नहीं कर सकता इसलिये पहिली स्टेज या श्रेणी को पार करने के लिये जीव को गुरु का इष्ट बनाना पड़ता है। लेकिन कोई गुरु फकीरचन्द या दाता दयाल जी या बाबा सावन सिंह जी को ही मानता रहेगा तो वह अन्तिम पद तक नहीं जा सकता।

गुरु को मानष जानते, ते नर कहिये अन्ध।
दुखी होंय संसार में, आगे यम का फंद ॥
गुरु किया है देह को, सत्गुरु चीन्हा नाहिं।
कहैं कबीर ता दास को, तीन ताप भरमाहिं ॥

मेरी सफलता का रहस्य क्या है ? मेरे पिछले कर्म थे। दाता दयाल जी पर मेरा विश्वास बैठ गया था। जब मैं उनके दरबार में गया था तो मेरा उनकी सन्तान या परिवार की ओर ध्यान नहीं जाता था। मैं तो उनको मालिक समझता था। मुझे रूप का पता नहीं था मगर मालिक के रूप पर मुझे पूर्ण विश्वास था कि वह भगवान है इसलिये जीवन में मुझे अगर पूर्ण नहीं तो ९०—९५ प्रतिशत सफलता अवश्य हुई है।

जो लोग यह समझते हैं कि फकीरचन्द या बाबा सावन सिंह या दाता दयाल जी महाराज गुरु हैं तो वह अन्तिम पद तक नहीं पहुँच सकते। गुरु निष्ठा है। हम दरबार में जाते थे तो यह समझते थे कि मालिकेकुल के दरबार में बैठे हुये हैं। यह मेरी सफलता का रहस्य है मगर यह भाग्य की बात है। तुम लोग मेरे सत्संग में आते हो। यदि तुम यह रहस्य मेरे पास से ले जाओगे तो तुम भटकोगे नहीं और लूट से भी बच जाओगे। हमेशा अपने अन्तर चलने की कोशिश करो।

मैं वीतराग पुरुष हूँ। आज तक किसी सन्त ने ऐसा नहीं कहा कि मैं अवतार हूँ। केवल कबीर साहब जो आदि सन्त कहलाते हैं उन्होंने कहा कि—

अब हम अवगति से चल आये।

मैं अभी तक नहीं निकला हूँ और गिरता रहता हूँ मगर सँभलता रहता हूँ और उस आधार का साधन करता रहता हूँ।

कुछ करनी करतूत न रखते,
चढ़ना चलना सब भ्रम कहते।
आना जाना भी कुछ नहीं,
चेतन ही चेतन इक सही।
पर इक मतलब की उन धारी,
व्यौहारिक जग सत्य कहारी।
कोई प्रारब्ध सत मानें,
भोग चुकें तब असत बखानें।
अब चेतन चेतन ही रहा,

॥ मनुष्य बनो ॥

जग त्रैकाल कभी नहीं हुआ। वेदान्ती ऐसा मानते हैं।

मैं भी चेतन तू भी चेतन,
मैं तू का यह भरम मिटावन।
चेतन को पकड़ा मजबूत,
छोड़ा जग को मिथ्या कूत।
सुरत अंश का भेद न पाया,
जो सतपुर से आन समाया।

सुरत का असली रूप तो उनको समझ में नहीं आया। यह न समझना कि मैं सन्त मत का पक्षपाती हूँ। मैं सचाई वर्णन कर रहा हूँ। जब से सत्संगियों से यह पता लगा कि मेरा रूप लोगों के अन्तर प्रगट होता है लेकिन मैं होता नहीं, तो मुझे यह सिद्ध होगया कि मेरे अन्तर भी जो रूप रंग प्रगट होते हैं यह सब कल्पित हैं। मेरा घर इन सब से परे मेरा अपना स्वरूप है और वह उन सब से न्यारा है। वह गूंगे का गुड़ है और अनुभव है। शब्द को सुनते हुये अपना इष्ट वह रक्खो जहां से शब्द प्रगट हुआ है। दाता दयाल जी कहा करते थे कि अपना आदर्श ऊँचा रक्खो ताकि चलते चलते कहीं तो पहुंचोगे। यदि आदर्श नीचा है तो कहां पहुंचोगे। वह मुझे बहुत समझाया करते थे मगर मेरी समझ में बात आती नहीं थी। यह समझ देने को मुझे यह गुरु पदवी दी थी।

यह तो भेद सन्त कोई जाना।
और कोई नहिं परख पिछाना॥

अब देखो मैं कितना भेद तुम लोगों को बताता हूँ मगर हर एक आदमी अधिकारी नहीं है। इसलिये यह सत्संग विशेष विशेष आदमियों के लिये है। मैंने इस रहस्य को इसलिये खोल दिया है कि लाखों आदमी अपने आदि-घर जाने के लिये गुरुओं के पीछे दौड़े फिरते हैं।

चलते चलते जो गिरे, ताहि न लागे दोष।
जो घर से ही ना चले, ताको करें कोस॥

बच्चा चलता है और गिरता है। गिरते गिरते होशियार होजाता है। घबराओ मत। यह मन की चालें हैं। मन मुझ पर भी हमला करता है मगर मैं संभल जाता हूँ।

दुद्धि की गम उसमें नाहीं। वह रही चेतन चेतन माहीं॥
चेतन चेतन करत बखाना। सुरत चैतन्य का मर्म न जाना॥
सब मत ऐसा धोखा खाया। सुरत भेद काहू नहिं पाया॥

किसी समय जब दाता दयाल जी ने यह पोथी सार बचन मुझे पढ़ने को दी तो इन बातों को पढ़कर मेरे दिल में यह ख्याल पैदा हुआ कि मैं कहाँ फँस गया लेकिन चूंकि दाता दयाल पर मेरा पूर्ण विश्वास था इसलिये उन को छोड़ न सका। आज कहे जाता हूँ कि सन्तों का मार्ग बहुत ऊँचा है। आज मैं तुम लोगों को सन्त मत का भेद बता रहा हूँ। यदि इस समय तुम को इसकी समझ नहीं भी आई तो कोई हानि नहीं। यह जो ख्याल और संस्कार मैं तुम लोगों को दे रहा हूँ, यदि अन्त समय में भी तुम होश में रहे तो यह संस्कार तुम्हारी सहायता करेगा और तुमको इस चक्र से निकाल देगा। यदि उस समय तुमको किसी गुरु का रूप आगया तो तुमको दूसरा जन्म अच्छा मिलेगा मगर चक्र से नहीं निकलोगे।

हुजूर बाबा सावन सिंह जी कहा करते थे कि सौ वर्ष की पूजा से ढाई घड़ी का सत्संग बढ़कर है। क्यों ? क्योंकि सौ वर्ष की तपस्या करने के बाद तुमको जो अनुभव होगा वह किसी सन्त के सत्संग से बिना परिश्रम ही मिल जायगा। मैंने जीवन भर जीवों के भ्रम ही दूर किये हैं।

मैंने आज आत्मज्ञान के बारे में बहुत कहा है। अब साँसारिक बातें बताता हूं। अपनी २ रुचि या हित की बातें लेजाओ। यह मनोमय जगत है इसलिये अपने संकल्प को ठीक रक्खो और अपना जन्म बनाओ। दुखियों की सहायता किया करो। इस समय जो लड़ाई में मारे गये हैं—किसी का पति मर गया, किसी का बाप मर गया, किसी का बेटा मर गया, उनके लिये डिफेंस फण्ड में सहायता दो। मानवता मन्दिर ने भी डिफेंस फण्ड में पांचसौ रुपये दिये हैं।

घरेलू जीवन में जो तुम्हारे रिश्तेदार दुखी हैं उनकी सहायता करो और उनकी शुभ भावनायें लो। किसी आवश्यकता वाले की सहायता करो, तुम्हारी भी सहायता होगी। विचार में बहुत बड़ी शक्ति है। कटनी वालों ने या दुर्गादास ने या रामप्रकाश ने या दूसरों ने जिन्होंने मेरी सहायता की मालिक ने उनको भाग लगाया। मैं उन लोगों का भला चाहने के लिये विवश हूँ। इसलिये ऐ गृहस्थियो ! अपने घरों में अपने बूढ़े मां बाप, दुखी और गरीब रिस्तेदारों की सहायता करो। उनके हृदय से तुम्हारे लिये आशीर्वाद निकलेगा जो तुम्हारे लिये कल्याणकारी होगा। किसी का भला करना या किसी की सहायता करना या सेवा करना दुनियाँ में सबसे बड़ी वस्तु है। किसी के चित्त को दुखाना महापाप है। अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्ति को कायम रकखो और विषय विकार कम करो। जो आदमी जितना अधिक विषय भोगता है वह उतना ही दुखी होगा।

थोड़ा बहुत गायत्री और सावित्री का साधन किया करो। मुझे देखो मैं दिनभर कितना बोलता हूँ। आध घण्टे प्रकाश में चला जाता हूँ तो ताजा हो जाता हूं।

कल दुर्गादास ने सवाल किया कि महाराज ! शब्द अभ्यासी क्यों गिर जाते हैं और क्यों कामी और क्रोधी हो जाते हैं ? मैंने कहा कि केवल शब्द अभ्यास ही लाभ नहीं करता। साथ में सत्संग भी होना चाहिये। शब्द के साधन से अभिप्राय यह है कि तुम्हारा अनुभव जागे। यदि शब्द अभ्यासी सत्संग करके अनुभव प्राप्त नहीं करता तो वह गिरेगा। इसलिये सत्संग करो ताकि लाभ पहुंचे। उथल पुथल का नाम ही जीवन है। गिरा और संभला।

मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि सबका कल्याण हो। मैं यही कुछ कर सकता हूँ या सच्चा ज्ञान दे सकता हूँ। गुरु की शुभ भावना तुमको ज्ञान देगी। जो देता है उसको मिलता रहता है। जो देता नहीं उसको क्या मिलेगा ?

आज मैंने जो कुछ कहा है यदि इसे संभाल सको तो तुमको शान्ति मिलेगी।

सब को शान्ति !

* सुरत शब्द *

(ले०—परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज)

सुरत शब्द योग क्यों आया ? मानव जीवन किसी वस्तु की खोज करता आ रहा है। जैसे-जैसे उसके अनुभव होते जाते हैं वह आगे बढ़ता जाता है, वैसे हमारे दुनियांवी जीवन में रहन-सहन के ढंग बदल गये हैं, तथा युद्ध के ढंग बदल गये हैं। रहन-सहन क्यों बदल गये ? क्योंकि मानव जीवन अनुभव से गुजरता चला आ रहा है। इस कलियुग में नाम, अनहद बाणी सतनाम, और सचखंड अकाल पुरुष, या अनामी पद आदि के शब्द गढ़ लिये गये। आज भी घई (श्री हंसराज घई कानपुर वासी) आया हुआ हैं। यह भी किसी वस्तु की लालसा में व्यास में टोकरी उठाने की सेवा किया करता था। इसके लिये सत्संग कराता हूँ कि नाम क्या है ? किसको मिलता है ? इसका अधिकारी कौन है ? यह नाम हर एक के लिये नहीं है। संतों ने पता नहीं क्यों बीज डाल दिया। शायद इस दृष्टि से कि इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म या उससे अगले जन्म में इस नाम का संस्कार रहेगा। फिर इस नाम से लाभ क्या ? मैं अपने आपसे पूछता हूँ कि फकीर ! तुझे इस सुरत शब्द योग से क्या मिला।

मुझे यह मिला कि जीवन के अन्दर जो एक प्रकार की खेंचतान होती है इस साधन से वह समाप्त हो गई क्योंकि खेंचतान करने वाला तुम्हारा अपना ही मन है। जब मन ही न रहा तो खेंचतान कौन करेगा ! हमारी बुद्धि, हमारी छानबीन या किसी वस्तु को प्राप्त करने की समझ जब तक मौजूद है तब तक खेंचतान हमेशा रहेगी।

इस खेंचतान से निकलने के लिये, मन की शक्ति को समझना है। चूंकि मन बड़ा बलवान है और खेंचतान का मुख्य कारण हमारे जीवन की आवश्यकतायें हैं तो या तो पहिले किसी की आवश्यकतायें पूरी हों या वह आवश्यकतायें न रहें, तब वह आगे जा सकता है। इसलिये पूर्णमासी और अमावस का महात्म है।

सुरत शब्द योग की जो शिक्षा मुझे मिली वह कहता हूँ। मिस्टर घई का मैं गुरु नहीं। इनके गुरु बाबा चरनसिंह जी व्यास वाले हैं। मैं इनका भाई हूँ। किसी को बात समझाना है या किसी को दलदल से निकालना है तो यह आवश्यक नहीं कि गुरु बनके ही निकाला जाय। बाबा सांवले शाह (सावनसिंह) व्यास वाले कहा करते थे। मुझे चचा, भाई या मित्र समझलो। दातादयाल ने कहा था—

सुन फकीर तोहि भेद बताऊँ। शब्द योग खुल कर जतलाऊँ ॥
सहस कंवलदल है अनेक। इस पद में नहिं सूझे एक ॥

यह सहसदल कंवल एक हौवा बना हुआ है। आजकल शब्द योग भी एक हौवा बना हुआ है और हौवा रहेगा। किन के लिये ? उनको जिनको संसार की आशायें हैं और उनसे निकल नहीं सकते।

यह राम रखी बैठी है इसका लड़का बीमार है। यह अभ्यासिन है। मुझ से प्रेम करती है मगर सांसारिक मोह मौजूद है तो वह जो नाम इसने लिया हुआ है, तो यह देखना है कि वह कहां तक इसकी सहायता करेगा ! जब तक यह ज्ञान नहीं कि कोई बेटा नहीं, बाप नहीं, लाख प्रयत्न करने पर भी वह मोह का सम्बन्ध आगे न जाने देगा। यह नाम सर्व-साधारण की वस्तु नहीं हैं। यह उनके लिये है—

विषयन से जो होय उदासा।
परमारथ की जा मन आसा ॥
धन सन्तान प्रीति नहिं जाके।
खोजत फिरे साध गुरु ताके ॥

इस राम रखी के अन्तर ऐसे चमत्कार हुये कि मेरे रूप ने इसकी अनेक प्रकार से सहायता की, यहां तक कि एक दिन मेरे रूप ने उसके सब बर्तन भी साफ किये। मगर आज बताइये कि मेरा वह रूप अब क्या सहायता करता है। यद्यपि यह राम रिखी अपने बेटे की बीमारी का इतना दुख नहीं मानती जितना दूसरी मातायें मानती है मगर दुख से यह भी बच नहीं सकी। इसलिये मैं इस सुरत शब्द योग को हर आदमी को देने के विरुद्ध हूँ। दातादयाल का कथन है कि पहिली स्टेज (श्रेणी) क्या है।

सहसदल कंवल

तुम्हारे मन में अनेक प्रकार के विचार उठते रहते हैं। मेरा अनुभव सिद्ध करता है कि यदि तुम को दुनियां की आशायें या कामनायें नहीं हैं और तुम बिल्कुल त्यागी हो, मगर जब तुम अकेले बैठोगे, मन फिर भी अनेक प्रकार के गुनावन अवश्य उठायेगा। तुम हर तरह सुखी हो मगर मन फिर भी संकल्प विकल्प उठायेगा। इन संकल्पों को रोकने के लिये इष्ट या रूप बनाना पड़ता है। उसके ध्यान से तब मन अनेक प्रकार के विचार न उठायेगा और एक रूप में लग जायगा।

यह विराट का रूप कहावै।
दो प्रकार के शब्द सुनावै॥

यह जो मन का स्थान है यह विराट स्वरूप है। शास्त्रों में भगवान के रूप तीन माने हैं—एक विराट, दूसरा अव्याकृत, तीसरा हिरण्यगर्भ अर्थात् एक देह दूसरा मन, तीसरा आत्मा है।

इसी तरह हमारा मन हमारे अन्तर हर समय संकल्प उठायेगा। चूंकि यह प्रकृति है इसके इकट्ठा होने पर जो आवाज अन्तर में उठती है वह घंटे के समान है। यह शब्द घंटा आदि अन्तर में क्यों होते हैं। यह "सार का सार" नामी पुस्तक में विस्तार से वर्णन कर दिये गये हैं। इसमें केवल इतना ही है कि साधन करने से तुम मन पर काबू पालो। तुम हमेशा घन्टे का शब्द न सुन सकोगे, क्योंकि जब एक श्रेणी पास हो जाती है तो फिर वह सुनाई नहीं देता किन्तु अगली श्रेणी के शब्द क्रमशः सुनाई देंगे। जिस तरह तुमने बचपन का जीवन गुजार दिया, अब यदि चाहो कि वह बचपन के विचार फिर आ जायें तो नहीं आयेंगे। जवानी में काम भोगा। अब बुढ़ापे में यदि वही काम का आनन्द आये, जो जवानी में तुमको आया था, यह असम्भव है। हर काम की स्टेज होती है। थोड़ा साधन करो। जब मन वश में आ जाय, फिर आगे चलो।

जोति निरंजन माया ईश्वर। प्रगटे स्थूल रूपधर॥

॥ मनुष्य बनो ॥

जब मन एकाग्र होता है और चूँकि मन की उत्पत्ति आत्मा या प्रकाश से है, अतः प्रकाश कहीं सफेद, कहीं लाल और कहीं ज्योति के रूप का है। यह मन की व्यवस्था के कारण विचारों के अनुसार या मानसिक प्रकृति के अनुसार तुम्हारे अन्दर प्रकाश होते हैं, जिस तरह सूर्य प्रातःकाल चढ़ता है और प्रातः सायं लाल दिखाई पड़ता है। वास्तव में वह लाल नहीं मगर गर्द गुबार और धुन्ध आदि के कारण लाल दिखाई पड़ता है। चूँकि पहिली श्रेणी में पुरुष और प्रकृति रचना करते हैं तो ज्योति की शक्ल में आत्मा दिखाई आती हैं। सहस्र नेत्र, सहस्र कान, सहस्र कला के यह स्थान हैं। जो मन के अन्तर अनेक प्रकार के विचार निकलते हैं उसका नाम सहस्रदल कंवल है।

देख विराट की अगम छवि, चित्त में हो परसन्न।
तब त्रिकुटी की ओर चल, धर गुरु मूरत मन॥

सहस्रदल कंवल से दसवें द्वार तक का साधन पूर्णमासी का साधन है क्योंकि इस साधन के करने वालों की तरह-तरह की इच्छायें पूरी हो जाती हैं।

एक मार्ग यह भी है कि वह सोहंग से शुरू करते हैं। वह सन्यासियों का मार्ग है। वह नीचे की श्रेणियां छोड़ जाते हैं। उनको मन की इच्छाओं से तथा आनन्द से कोई लगाव नहीं होता। वह आदमी हैं तो हमसे अच्छे और वह मंजिल पर शीघ्र पहूँचेंगे मगर संसार के मनानन्द, विवेकानन्द और ज्ञानानन्द से बंचित रहेंगे। आत्मानन्द लेंगे मगर यह दूसरा आनन्द नहीं ले सकेंगे। गृहस्थियों को पूर्णमासी का मार्ग है और सन्यासियों का अमावस का मार्ग है।

॥ उलझनें ॥

(ले०—परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज)

(१) विषय विकार का जीवन—जिस स्त्री और पुरुष में कामाँग अधिक होता है और वह मन से तथा शरीर से विषय विकार का ध्यान या भोग अधिक करता रहता है उसमें मानसिक और शारीरिक अशान्ति का आना अनिवार्य है। मैंने इस विषय पर आवश्यकता से अधिक प्रकाश डाला है। इसके लिये मेरी 'सचाई' नामी पुस्तक का अध्ययन किया जाय। गीता रामायण व अन्य सन्तों की पुस्तकें स्पष्ट कहती हैं कि इन्द्रियों के भोग में जो अधिक लिप्त होगा वह दुखी होगा। अतः शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है। इससे मेरा अभिप्राय गृहस्थ के त्याग करने से नहीं है बल्कि समय से पहले विवाह नहीं होना चाहिये तथा इन्द्रियों की तृप्ति के लिये ब्रह्मचर्य को नष्ट नहीं करना चाहिए। जिनमें यह रोग आ जाता है उनको यह आत्मिक शान्ति बहुत देर से मिलती है। शायद जीवन में न भी मिले। यदि मैं १२ वर्ष बसरा बगदाद में न रहता तो न मालुम मेरे जीवन की क्या दशा होती ? वहां मेरा शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य स्वयं हो गया। यही बातें हुजूर साँवले शाह जी सत्संगों में कहा करते थे। मेरे इस लेख को पढ़कर कोई स्त्री पुरुष मनमत होकर गृहस्थ का त्याग न करे। अपनी परिस्थितियों को किसी पूर्ण पुरुष को बतला कर उससे सही राय ले लें। मैंने सिद्धान्त की बात वर्णन की है।

(२) उलझन—सांसारिक कामनायें—सांसारिक कामनाओं के कारण मनुष्य अशान्ति और बेचैनी का शिकार होता है। आशा रूपी डोरी की फाँसी हर एक आदमी के गले में पड़ी है समस्त धर्मावलम्बी बेख्वाइशी या निष्कामता की रट लगाते हैं मगर यह अमली या व्यवहारिक जीवन के प्रतिकूल है। इसका उपाय है 'काम करो'। हुजूर साँवले शाहजी ने मुझे विशेष रूप से लिखा है कि जीवन रूपी घोड़े की दो रकाबें हैं—एक परमार्थ

दूसरी स्वार्थ । स्वार्थ के लिये कर्म है और परमार्थ के लिये केवल पूर्ण पुरुष का सतसंग । शारीरिक स्वास्थ्य के बिना कर्म नहीं हो सकता । इसलिये गलत तपस्या के भ्रम में अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ना नहीं चाहिये ।

हाँ, तुम्हारा अपना जीवन सादा हो । किफायतशारी (मितव्ययता) से काम लो । संतमत में जो डेरे, धाम बनाये जाते हैं, इसका यही अभिप्राय है कि जीवों को काम मिले । वह लोग धन्य हैं जो किसी को दान देने के बजाय बेकारों को काम देते हैं । मुझे दातादयाल जी ने यह आज्ञा दी थी कि अपनी रोजी आप कमाओ । हाँ, अनुचित लालच अथवा चार सौ बीस करके कमाने से बचो । वर्तमान समय की परिस्थितियों के अनुसार मैं कह देना चाहता हूँ कि बहुत अधिक ईमानदारी और सचाई व्यवहारिक मामलों में भी अशान्ति उत्पन्न कर देती है । इस विषय में प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने गुरु या पथ-प्रदर्शक से सलाह लेनी चाहिए ।

एक बार एक स्त्री ने मुझ से प्रश्न किया कि मेरे बच्चों की कमाई अच्छी नहीं है मैं क्या करूँ । मैंने उत्तर दिया कि माई ! घर का काम सुबह से शाम तक किया कर और उसके बदले में रोटी कपड़ा ले लिया कर अन्य किसी वस्तु को या लड़कों की सम्पत्ति को अपना न समझ । उन नाजायज कमाई का तुम पर कोई प्रभाव न होगा । इसी सिद्धान्त पर यदि जमा करने की लालसा न हो तो कोई बोझ नहीं । दृष्टांत के रूप में मैंने नियम बता दिया है । अधिक व्याख्या से कुछ का कुछ समझे जाने का भय है । इसलिये अधिक अपने गुरु से ही परामर्श करना चाहिये ।

(३) **दुविधा**—मनुष्य के अन्दर किसी बात के निर्णय करने में हिचकिचाहट का माद्दा पैदा होता रहता है और मनुष्य में अशान्ति उत्पन्न कर देता है । उसका उपाय धर्म या सिद्धान्त पर स्थित रहना है । यह धर्म या सिद्धान्त परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर बनाये जाते हैं । इसमें खान-दानी रिवाज और देश के वातावरण को भी देखना पड़ता है । यदि मनुष्य स्वयं निर्णय न कर सके तो किसी बुजुर्ग की राय लेना आवश्यक है । सन्तों के मार्ग में धर्म वह है जो मनुष्य की तवज्जह (ध्यान) को सतपुरुष के चरणों

की ओर ले जाय और अधर्म वह है जो मनुष्य को उससे दूर करदे। वह सत्पुरुष या दयाल शान्ति है। जिस-जिस सिद्धान्त या नियम पर चलने से हम निर्भय, अचिन्त (चिन्ता रहित) बेगम (अशोक) बेफिक्र रह सकें, वह धर्म है। मैंने अपने जीवन में अत्यन्त ईमानदारी से काम लिया। दातादयाल हँसकर कहा करते थे। कि 'ईमानदारी इष्ट पद नहीं है। मुझे इस रहस्य का पता नहीं लगता था। देर के पश्चात् ज्ञात हुआ कि इष्ट पद क्या है? इष्ट पद निर्भय, निर्बैर और अचिन्त होकर रहना है।

इसके अतिरिक्त मनुष्य की दुबिधा का मूल कारण मन की अबलता है। इसका उपाय विश्वास है, जहाँ भी अर्थात् जिस रूप में विश्वास बैठ जाय। मनुष्य का यह विश्वास ही ईश्वर और परमेश्वर या गुरु है। यही मनुष्य की असली सहायता करता है। 'विश्वासम् फलदायकम्' ऐसा शास्त्र कहते हैं और 'मन की गति कही न जाय' यह गुरुनानक का कथन है। इस ख्याल को या विश्वास को या इच्छा शक्ति को बढ़ाने के लिये सुमिरन, ध्यान और अजपा जाप आदि हैं मगर यह साधन बिना पूर्ण पुरुष के सतसंग के करना चाहिये।

गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान।
गुरु बिन नाम हराम है, जा पूछो वेद पुरान॥

लोगों ने यह समझ रक्खा है कि केवल किसी महात्मा से नाम ले लिया और बस! मैं जोरदार शब्दों में कहता हूँ कि यह बड़ी भारी गलती है। मैं विरोध की परवाह न करता हुआ कहता हूँ कि **पहिले पूर्ण पुरुष का सतसंग करो और सत्संग से अपनी आँतरिक वासनाओं में परिवर्तन करो, जो सुमिरन ध्यान का मूल है। यदि ऐसा न करोगे तो जिस प्रकार की वासनायें तुम्हारे मन में मौजूद हैं सुमिरन ध्यान करने से वही वासनायें (चाहे वह बुरी हैं या भली)** बढ़ जायेंगी और तुम अपनी वासनाओं के अनुसार अपनी दुनिया बना लोगे।

मैं कह रहा हूँ हेला मार, जीवन अपने का अनुभव सार।
जैसी वासना होगी अन्तर में, वैसी पकेगी मेरे यार॥

ताते लिया है सिर पर भार, प्रगटा हूँ जग में कहने सार ।
बिन सतसंग गुरु पूरे के, तुम होगे जगत में ख्वार ॥

(१) श्री गुरु गोविन्दसिंह को बचपन से ही अपने पूज्य पिता के साथ रहने से ही देश की परिस्थिति के प्रभाव से हिन्दू जाति की रक्षा का ख्याल मिला था। आपने तप किया और उनकी अपनी ही इच्छा ने भजन, सुमिरन और ध्यान करने से शक्ति का रूप धर कर तलवार दी। वह जो कुछ कर गये सबको ज्ञात है।

(२) हुजूर श्री आनन्दस्वरूप साहब आगरा वाले, जैसा कि उनके एक सहपाठी ने कहा था, बचपन से ही स्टेट बनवाने और जनसाधारण को लाभ पहुँचाने का ख्याल था। राधास्वामी मत में आने से उनका सुमिरन ध्यान रंग लाया और वह जो नेक कार्य कर गये, हम सब उनके कृतज्ञ हैं।

(३) हुजूर दातादयाल महर्षि शिवब्रतलाल ने सार तत्व और सचाई के वर्णन करने और धार्मिक पक्षपात को दूर करने के लिये कम से कम ४५०० पुस्तकें लिखी। उन्होंने यह ख्याल आर्य-समाज के गलत खण्डन के कारण से लिया था जैसा कि उनकी अपनी पुस्तकों से प्रकट होता है।

(४) श्री सांवले शाह ने धार्मिक पक्षपात को दूर करने का ख्याल लेकर डेरा बनाया। यह ख्याल उनको बाबा जैमलसिंह से मिला। उन्होंने मस-लहत से राधास्वामी मत की बाणी में जहां हुक्का आदि को उल्लेख था काट दिया, ताकि धार्मिक घृणा न रहे। उनका एक पत्र हुजूर कृपालसिंह के नाम लिखा हुआ था जो मासिक पत्र 'दयाल' में प्रकाशित हुआ है। उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि संत मत कोई मजहब नहीं है बल्कि अध्यात्म (रूहानियत), जिसको मैं शान्ति और आनन्द कहता हूँ, का मार्ग है।

(५) ध्रुव ने राज न मिलने के कारण विष्णु भगवान से मिलने के लिये तप किया। दूसरे शब्दों में सुमिरन ध्यान किया। उसकी अपनी ही आस ने विष्णु का रूप धारण करके उसको राजपदवी दिलाई।

(६) हुजूर कृपालसिंह, जो किसी समय सांवलेशाह के गुरु मुख कहलाते थे, की आस थी कि उनकी जगह सच्चाई की शिक्षा को फैलायेंगे। वहां

अवसर न मिला तो उनकी अपनी आस ने ही उनके अन्दर हुजूर सांवलेशाह का रूप धर कर इस कार्य को प्रारम्भ कराया और उनकी आस ने ही महर्षि जी का रूप धर कर मेरे नाम उन्होंने संदेश दिया। जैसा ख्याल वैसा हाल।

(७) मैंने बचपन से उस परम तत्व, मालिके कुल या राम के मिलने की लालसा की थी और जानना चाहता था कि सार तत्व क्या है। वह समझ गया।

परम तत्व मैं हूँ, मुझ में परम तत्व अयाँ है।
किसको ढूढूँ अब मैं, उससे खाली न कोई स्थान है॥

सन् १९४७ ई० की घटनाओं से मेरे विचारों ने पलटा खाया और अब 'प्राणी मात्र को शान्ति मिले' (Peace to humanity) की आस रखकर सुमिरन ध्यान भजन करता रहता हूँ।

* धन का उपयोग *

(ले० सेठ दुर्गादास, चण्डीगढ़)

शहर में एक महापुरुष पधारे। भक्त लोग उनके दर्शनों के लिये गये। महापुरुष ने एक सज्जन से पूछा कि आपके व्यापार का क्या हाल है।

उत्तर—बहुत अच्छा है महाराज ! अच्छी आमदनी है। गुजारा बढ़िया चल रहा है।

प्रश्न—कोई कष्ट कोई चिन्ता तो नहीं ?

उत्तर—लड़की व लड़कों के विवाह निकट आरहे हैं। इसके लिये धन की आवश्यकता है।

प्रश्न—इसके अतिरिक्त और कोई आवश्यकता तो नहीं ?

उत्तर—महाराज ? छोटा लड़का पढ़ रहा है। इसकी पढ़ाई है। एक जमीन मोल ले चुका हूं। इस पर मकान बनाने का विचार है, इसके लिये भी धन की आवश्यकता है।

प्रश्न—कुल कितना रुपया इनको चाहिये ताकि तुम्हारे सब काम ठीक हो जायें ?

उत्तर—दो लाख रुपये से सब काम पूरा हो जायगा।

प्रश्न—फिर इसके बाद तुमको रुपये की आवश्यकता तो न रहेगी ?

उत्तर—महाराज ! बिल्कुल नहीं। जब सब काम हो जायेंगे, मैं बिल्कुल सुखी और अचिन्त हो जाऊँगा।

प्रश्न—बहुत अच्छा ! हम बचन देते हैं, तुमको दो लाख रुपया शीघ्र मिल जायगा। क्या तुम एक प्रतिज्ञा कर सकते हो कि इसके बाद जो कमाई करोगे, अपने घर का खर्च निकाल कर गरीबों अनाथों में बाँट दिया करोगे ताकि तुम्हारा परलोक बन जाये। तुमको स्वर्ग मिले। दान देना महा पुण्य कर्म है। ईश्वर के दर्शन होते हैं।

उत्तर—कोई उत्तर न बन आया। आंय बांय करने लगे। महाराज जी ! यह कैसे हो सकता है। त्याग बड़ा कठिन काम है।

महापुरुष ने कहा कि आमदनी की कोई हद नियत करना मनुष्य के लिये बहुत कठिन है तथा असम्भव है। कौन बहादुर इस संसार में है जो यह प्रतिज्ञा करे कि इसकी हद के बाद जो कमाई होगी, परोपकार में लगाऊँगा। निर्धनों की सहायता पर खर्च करूँगा। भाई साहब ! आज आप २००)तनख्वाह ले रहे हैं। क्या आप हद नियत कर सकते हैं कि एक हजार रु० तनख्वाह के बाद जो तरक्की मिलेगी सब गरीबों में बाँट दिया करूँगा। यद्यपि इस समय हालात यह नहीं बताते कि कभी आपकी तनख्वाह एक हजार रुपया हो जायेगी। इस पर भी प्रतिज्ञा करना बड़ा कठिन है।

फिर महापुरुष कहने लगे कि—

धन से भोजन सामिग्री खरीदी जा सकती है लेकिन भूख धन से नहीं खरीदी जा सकती। धन से जेवर, कपड़े, श्रंगार व सजावट के सामान आदि खरीदे जा सकते हैं लेकिन धन से सुन्दरता नहीं खरीदी जा सकती। धन से दवायें मोल ली जा सकती हैं किन्तु स्वास्थ्य नहीं मिल सकता।

धन से शिक्षा मिल सकती है लेकिन धन से अनुभव नहीं लिया जा सकता। धन से रिश्तेदार बन सकते हैं लेकिन धन से नींद नहीं खरीदी जा सकती। धन से साथी मिल सकते हैं लेकिन धन से मित्रता नहीं मिल सकती।

धन से सब पदार्थ अपने आराम के लिये मोल लिये जा सकते हैं लेकिन धन से आनन्द और शान्ति नहीं खरीदी जा सकती।

सब भक्त लोग यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और मन में विचार करने लगे कि महाराज जी ने कितनी निराली और सच्ची बात कही हैं।

: गज़ल :

दयाल स्वरूप पीरेमुगां साहब, दहली

खुदा ही जिसका ना खुदा हो, क्यों न पूरा मुद्दआ हो।
दर्द में भी गर दर्द न हो, किस जवाँ से फिर सना हो॥
हक समझ अपने ही हक पर जो रहे,दे तो ले-न दे-भला हो।
जबाँ ही जबकि होजाये बन्द, लब पर फिर क्यों दुआ हो॥
उसकी ही दुआ से जो जिये, हाजत फिर क्यों दवा हो।
फिक्र व गम तरद्दुद सब खतम,मौज से मौज या शफा हो॥
मौज न हो तो फिर क्या हो, क्या पता किस वक्त क्या हो।
अजब बात दिल बेदिल समझे, वगैर बाज़ू व पर जो उड़ा हो॥
जमीं ही में बने आसमाँ, बशर्ते दिल न कहीं धरा हो।
पहुंच ही जायगा मंजिल पर, हमराह मुरशिद जो चला हो॥
नजरे रहमत की हो जबकि,मुश्किल क्या जो मुश्किलकुशा हो।
जब तेरा अपना आपा नहीं, तेरा क्यों नुकसान नफा हो॥
मद मस्ती का मजा 'पीरेमुगाँ', दुआ ही लब पै ख्वाह दगा हो॥

परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज की —: अमरीका यात्रा :—

मासिक पत्र 'ए०आर०ई० न्यूज' विरजिनियां (अमेरिका) के विचार

HINDU HOLY MAN MAKES A SURPRISE VISIT TO THE A.R.E.

"It is my belief that all of the knowledge contiained in the readings is correct—Edgar Cayce could only do them in a trance-like state. I believe he was a great, saintly person in past lives and worked with medicine." Such was the opinion expressed by His Holiness Faqir Dayal of India, "a man," states Hugh Lynn Cayce, "whose point of view on thought forms and prophecies of coming world events was the closest to the Edgar Cayce readings of anyone I have ever met. He is also one of the most exciting personalities that I have met in many a day."

Huge Lynn first met His Holiness during a round-the-world tour in 1969, but it was not until this past May that Faqir Dayal was able to make a surprise visit to A. R. E. Headquarters, where he delivered a series of lectures to the conferees during

Reincarnation Week. A serene but vital and humorous man in his eighties, he spoke in Hindi-breaking occasionally into English—and added delightfully expressive gestures of emphasis and comment as Dr. I C. Sharma acted as interpreter. Dr. Sharma a frequent lecturer for the A. R. E. and visiting professor of philosopny at Virginia's Lynchburg College, considers Faqir Dayal to be the holiest man in India where he is known as "compassionate master."

Faqir Dayal is not widely known, although he has thousands of followers, because he has deligentlly avoided any personal claims of being a great teacher or miracle worker. "I ask myself, 'have you seen God ?' That God-which I have fathomed, realized—that realization I have received from the people who came to me. There's no doubt that the inspiration and blessing came from my spiritual teacher, but I came to khow it completely only through those I call my disciples"

He acknowledges no special cult nor sect, and insists that everyone must stick to his own religion or denomination. When asked what he thought of Jesus Christ he replied, "All I can say that He was the beloved of God. About his life and work—you must have read about it in Bible. The basis and foundation is faith, the depth of faith—not just in

किया। अस्सी वर्ष से ऊपर के इस सन्त के भाषण रोचक व प्रभावशाली थे। डा० आई०सी० शर्मा ने दुभाषिये का काम किया। डा० शर्मा ए.आर. ई. में बहुधा भाषण देते हैं और वर्जीनिया के लिन्चवर्ग कालेज में दर्शनशास्त्र के अतिथि प्रोफेसर हैं। उनके अनुसार फकीर साहब भारत के सर्वश्रेष्ठ सन्त हैं और उन्हें वहां दयाल गुरु के नाम से पुकारा जाता है।

फकीर दयाल को कम लोग जानते हैं यद्यपि उनके हजारों अनुयायी हैं। क्योंकि वे स्वयं एक महान शिक्षक या चमत्कारी होने का दावा नहीं करते। "मैं स्वयं से पूछता हूँ, हे फकीर ! क्या तूने ईश्वर से साक्षात्कार किया है ? उस ईश्वर को जिसे मैंने अनुभव किया और समझा है—मैंने उन लोगों के द्वारा जाना है जो मेरे पास आते रहे हैं। प्रेरणा और आशीर्वाद निस्सन्देह मुझे अपने आध्यात्मिक गुरु से मिले परन्तु उसके स्वरूप का पूर्ण ज्ञान मुझे अपने शिष्यों के माध्यम से ही प्राप्त हुआ हैं।" उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये।

वे किसी विशेष मत पन्थ को मानने वाले नहीं हैं और इस बात पर जोर देते हैं कि हर व्यक्ति को अपने धर्म या सम्प्रदाय को नहीं छोड़ना चाहिये। जब उनसे पूछा गया कि ईसा मसीह के बारे में उनका क्या विचार है तो उन्होंने उत्तर दिया "मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि वह ईश्वर का प्यारा था। उसके जीवन और काम को तुमने बाइबिल द्वारा जान लिया होगा। श्रद्धा हर धर्म का प्राण है चाहे वह ईसाई धर्म हो चाहे हिन्दू या अन्य।

फकीर साहब का अपने बारे में अहंभाव रहित विचार तब स्पष्ट हुआ जब उन्होंने एक आदमी का उदाहरण सुनाया जिसके सम्मुख वे प्रगट हुये और उसकी मदद की। एक अध्यापक बिना लायसेन्स के दवा किया करता था। एक बार उसने एक बड़े आदमी का इलाज किया। संयोग से उसकी दी हुई दवा ने प्रतिकूल असर दिखाया। ऐसी असहाय अवस्था में उसने और अधिक लगन से प्रार्थना की। तुरन्त उसे एक ज्योति दिखाई दी उसमें उसने फकीर साहब के स्वरूप का दर्शन किया जिसने उसे उचित दवा का निर्देश दिया। उस नौसिखिया डाक्टर ने फकीर दयाल को पहले कभी नहीं

॥ मनुष्य बनो ॥

[illegible] बाद [illegible] उसने [illegible] में । काफी [illegible] पूछा [illegible] यह कहा [illegible] फकीर साहब बोले कि "मैं [illegible] बहुत महत्वपूर्ण [illegible] क्या रहस्य है ? [illegible] होता है वह तीसरे नेत्र को खोलता है । जो विचार तुम्हारे [illegible] और इस प्रकार मनुष्य दिव्य दर्शन प्राप्त करता है । मुझे [illegible] कि में किस प्रकार औरों के सम्मुख प्रगट होता [illegible] इससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन लोगों के द्वारा मैंने अपने गुरु का या कृष्ण का साक्षात्कार किया है ।

मोक्ष के स्वरूप की व्याख्या करते समय जो हिन्दू धर्म में आत्मा से एकता का अन्तिम साक्षात्कार बतलाता है, फकीर दयाल ने कहा "ईश्वर दिव्य ज्योति या शक्ति से भी महान है । हमारी आत्मा का वह अंश जो उस प्रकाश का अनुभव करता है इस प्रकाश से भी परे है । वह ही ईश्वर है । प्रत्येक व्यक्ति का स्रोत वही परमेश्वर है जो उस प्रकाश से भी ऊँचा व परे है ।

॥ विरह और प्रेम ॥

कौन मिखावे मोहि जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यो न जाय ।
मैं हिरनी पिया पारधी हो, मारे शब्द के बान ॥
जाहि लगे सो जानिही, और दर्द नहिं जाने हो ॥१॥
मैं प्यासी पिया दरस की, रटत सदा पिया नाम ।
पिया मिले तो जीव है, नहिं सहजे त्यागूं जीव हो ।' के
पिय कारन पीरी भई, लोग कहें तन रोग तो
छः २ लंघन मैं करूं रे, पिया मिलन के जोग कौ
कहें 'कबीर' सुनो जोगिनी हो, तन में मनहि मिला परी
तुम्हरी प्रीति के कारनें, जोगी बहुरि मिलेंगे आय

॥ मनुष्य बनो ॥

हजार [illegible] की एक बात

१—[illegible] (प्रेम) एक प्रकार का जनून है। [illegible] हुआ वह मजनूं हो [illegible] और प्रेमी को उपदेश करने वाला पागल है। उसको कोई और काम करने को नहीं रहा जो इस ओर ध्यान दे रहा है। [illegible] सच्चा है तो वह असाध्य है। यदि सच्चा नहीं है तो वह कोई और रोग होगा जिसका निदान कराना चाहिये।

२—यदि तुम में बुद्धि है और मन्द बुद्धि वाले हो तो कभी किसी समय में पूर्ण रूप से सुखी नहीं हो सकते। इसके सिवाय हम शर्तिया तौर पर तुमको विश्वास दिलाना चाहते हैं कि पूर्ण रूप से तुम कभी दुखी भी न होगे।

३—दुनियां में सबसे अधिक शत्रु अपना विचार होता है। दूसरे शत्रु तो दूर रहते हैं और हर समय कष्ट नहीं देते मगर यह हर समय पहलू में रहकर छेड़ छाड़ किया करता हैं और करता रहता है।

४—स्त्री और पुरुष में मित्रता कैसी ! न कानों सुनी न आंखों देखी। हां वह किसी किसी दशा में मित्र से बढ़कर और घटकर कहे जा सकते हैं।

५—पुरुष को लाख अपनी मर्दानगी का गर्व हुआ करे और चाहे जो कठिन काम कर सके मगर आज तक एक पुरुष भी ऐसा देखने सुनने में नहीं आया जिसने स्त्री की जुबान पर काबू पाया हो। यदि किसी ने देखा हो तो हमको भी बतादो।

६—सम्भव है कोई स्त्री तुम्हारी बातों पर मुस्कराने लगे मगर इससे कभी यह न समझना कि उसको तुम्हारी बातों से सन्तुष्टि हो गई है या वह खुश हो गई है।

७—'त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं ब्रह्मा न जानाति कुतो मनुष्यः। स्त्री चरित्र को और पुरुष के भाग्य को ब्रह्मा ने भी नहीं जाना। आदमी का कहना ही क्या ?

८—यदि कोई हमसे पूछे कि पुरुष और स्त्री दोनों में से अधिक साहसी है तो मेरा उत्तर यही होगा कि 'स्त्री'। तुम्हारा जी चाहे तुम भी [illegible]ा कर देखो।

—महर्षि शिव'

* मानसिक जीवन *

ले० परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

संकल्प से ही भौतिक पदार्थ की उत्पत्ति होती है। मन भी उन्हीं तत्वों बना है जिनसे कि देह बना है। अन्तर केवल इतना है कि देह को बनाने लि तत्व स्थूल पदार्थ के होते हैं और मन के बनाने वाले तत्व सूक्ष्म पदार्थ होते हैं। जिस प्रकार स्वाद के वशीभूत अधिक खाने से शरीर की आरो- ता नष्ट हो जाती है, ठीक उसी प्रकार मन रसिक विचारों पर, जो कामोत्तेजक हों या व्यर्थ की गपशप के हों, ध्यान करने से अपनी आरोग्यता ष्ट कर बैठता है। मन के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये सन्तों ने अजपा जाप का साधन बताया है जिसका प्रयोजन कम और श्रेष्ठ बातों का ोचना है।

जो कामोत्तेजक विचारों के ध्यान में निमग्न रहता हो अथवा मानसिक व्यभिचारी हो अथवा जो अनावश्यक बातों पर मनन करता है, वह वास्त- विक मानसिक शान्ति कभी प्राप्त नहीं कर सकता। हाँ, अन्त में आपत्ति पत्ति का शिकार अवश्य होगा।

लेखक ने इस कहावत– "जैसा बोओगे वैसा काटोगे" का अनुभव अनेकों ार से किया है और इसे सच पाया है। यहाँ बोने से अभिप्राय सोचने है।

दूसरों से घृणा करना, दूसरों की चुगली करना और दूसरों का बुरा ोचने का वास्तविक अर्थ यही है कि उन विचारों का बीज हम अपने अंतर में बोयें और अनजान रूप से उनका फल पायें। विचार स्वयं हमारे कार्यों से अधिक शक्तिशाली हैं क्योंकि वह स्थूल भौतिक पदार्थ का उत्पन्न करने है। अतः अनुचित विचार और मलिन व गन्दी बातों के ध्यान से

मनुष्य पर आपत्तियां आती हैं। इसलिये सन्तों ने निम्नलिखित
निर्धारित किये हैं—

**इतना सोचो जिससे प्रयोजन सिद्ध हो। इतना खाओ जित
आवश्यकता की पूर्ति हो। इतना काम करो जिससे प्रयोजन पूर
सके अथवा इतना सोचो जो आवश्यक और लक्ष्य तक हो।**

जिन्होंने नाम का आश्रय लिया है, यदि वे उपरोक्त सिद्धान्तों का पा
नहीं करते तो उनको कुछ प्राप्त नहीं होगा। वे वास्तव में अपने आप
नष्ट भ्रष्ट कर लेंगे; क्योंकि जब नाम द्वारा उनकी वासनायें पूरी न हों
जो वह उनके अपने अज्ञान का कारण होगा, तो वह या तो सन्तों के
में बुरा भला सोचेंगे या घृणित भावों से उनकी शिक्षा की शिकायत करेंगे
अन्त में विचार की फिलोसफी के अनुसार उनके अपने विचार ही उन्हें न
भ्रष्ट कर देंगे।

आधुनिक समय के लोग विचार की शक्ति से नितान्त अनभिज्ञ हैं।
विचार क्या है इस विषय पर लेखक संक्षिप्त रूप में फिर वर्णन करने क
प्रयत्न करेगा।

जीवन शक्ति (ब्रह्मचर्य) की रक्षा

किसी व्यक्ति को अपनी जीवन शक्ति (Vitality) को जो शरीर
स्वस्थ, नीरोग और शान्तिमय अवस्था में रखती है, व्यर्थ नष्ट नहीं कर
चाहिए।

कोई व्यक्ति चाहे नाम' का सुमिरन करे अथवा गुरुओं के पास ज
और उनके आदेशानुसार अभ्यास करे किन्तु जब तक वह अपनी जीवन श
की रक्षा नहीं करेगा, उसके शारीरिक कष्ट दूर नहीं होंगे।

प्राचीन काल के महापुरुषों की रचनायें व हमारे ग्रन्थ विभिन्न रूपों
इस उपरोक्त कथन का समर्थन करते हैं।